. राजा क्षेमदर्शी के लिए कालकवृक्षीय मुनि का उपदेश

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! यदि राजा का सब कुछ छिन गया हो, तो उसको कैसे रहना चाहिए? भीष्म ने कहा–इस पर कोसलनरेश क्षेमदर्शी और कालकवृक्षीय मुनि का संवाद मनन करने योग्य है।

राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनि के पास गये और उनसे उन्होंने पूछा–राज्यविहीन राजा को क्या करना चाहिए? मेरा सब कुछ छिन गया है। आत्महत्या करने, दीनता दिखाने, दूसरों की शरण में जाने तथा इन जैसे नीच कर्म छोड़कर मेरे लिए कोई उपाय बताइए। जो मानसिक या शारीरिक रोग से पीड़ित है, ऐसे मनुष्य को आप जैसे धर्मात्मा ही शरण देने वाले हैं। जिस मनुष्य को विषयों से वैराग्य होता है, वह विरक्त होकर हर्ष-शोक को त्याग देता है। वह आत्मज्ञान के बल पर शाश्वत सुख का अनुभव करता है। जो केवल धन में सुख मानते हैं, उनके प्रति मुझे खेद होता है। मेरे पास धन बहुत था, परंतु वह स्वप्न में मिली संपत्ति की तरह नष्ट हो गया। जो संसार का मोह छोड़ देते हैं, वे धन्य हैं। ब्रह्मन! मैं राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट, दीन और दुखी होकर शोचनीय दशा में पड़ा हूं। इस संसार में जो धन से अलग सुख हो, उसे बताइए।

कालकवृक्षीय मुनि ने कहा–राजा! तुम समझदार हो। इसे समझो कि इस संसार में जो कुछ भी 'मैं' और 'मेरा' कहकर समझा जाता है वह सब अनित्य है। तुम जिस वस्तु को मानते हो कि 'यह है' उसे पहले से समझ लो कि 'नहीं है।' इसे समझने वाला किसी दशा में पीड़ित नहीं होता। जो वस्तु पहले थी और आगे होगी, वह न तो थी न होगी। जो सांसारिक वस्तु अनेकों की होती आयी और उनसे छूटती रही, वह तुम्हें भी मिलकर तुम्हारी नहीं रह जायगी। राज्य लक्ष्मी भी घूमती रहती है। यह एक के साथ सदैव नहीं रहती। राजन! बताओ तो सही, तुम्हारे पिता, पितामह आज कहां हैं? आज न तुम उन्हें देखते हो और न वे तुम्हें देखते हैं। अपना माना शरीर ही नहीं होगा, तब किसके लिए शोक किया जाय? राजन! मैं, तुम, तुम्हारे मित्र और शत्रु, ये सब नहीं रहेंगे। इस समय जो बीस-तीस वर्ष के नौजवान हैं, ये आगे सौ वर्ष के अंदर मर जायंगे। भविष्य में मिलने वाली वस्तुएं भी मेरी होकर नहीं रहेंगी। प्रारब्ध में जो होता है शरीर पर वही घटता है।

राजा ने कहा–मैं समझता हूं कि मुझे अनायास ही राज्य मिला था और अब वैसे चला गया। महान बलशाली काल ने उसे छीन लिया। जैसे पानी का

जोरदार बहाव किसी वस्तु को बहा ले जाता है, वैसे काल का प्रवाह मेरा सब कुछ बहा ले गया। मैं इस शोक का अनुभव करता हूं और जो कुछ मिल जाता है उसी से निर्वाह करता हूं।

मुनि ने कहा–यथार्थ बोध हो जाने पर मनुष्य किसी बात को लेकर शोक नहीं करता। बहुत-से मनुष्य ईर्ष्या-द्वेष में जल रहे हैं। कितने विवेकी मनुष्य स्त्री-पुत्र, संपत्ति आदि स्वतः त्यागकर साधना में लग जाते हैं। मनु की परंपरा में उत्पन्न राजा भरत ने स्वयं राजकाज छोड़कर संन्यास ले लिया था। अनेक राजे-महाराजे राज्य का त्यागकर जंगली फल-मूल खाकर जीवन-निर्वाह करते हुए साधना कर शाश्वत शांति को प्राप्त किये। धन अस्थिर है, ऐसा जानकर साधना में लगना चाहिए। सारे भोग अनर्थस्वरूप हैं। जब संग्रह का अंत विनाश है, जीवन का अंत मरण है और संयोग का अंत वियोग है, तब विवेकवान भौतिक वस्तुओं में मन क्यों लगायेगा? जब यह जान लिया कि धन मनुष्य को छोड़ता है या मनुष्य धन को छोड़कर चला जाता है, तब विवेकवान धन के पीछे क्यों पड़ा रहेगा? मूर्ख मनुष्य दूसरों के ऊपर आयी विपत्ति देखकर प्रसन्न होता है, परंतु कुछ दिनों में उसके ऊपर भी उस-जैसी या उससे भी भारी विपत्ति आ जाती है। सबके धन और मित्र नष्ट होते हैं। अतएव मन-इंद्रियों को वश में करो, वाणी पर संयम करो। अधिक मौन रहो। अपने सिवा कोई दूसरा मन-इंद्रियों को वश में करने वाला नहीं है।

संसर्ग में आने पर संसार का हमें भास होता है। जब संसर्ग कट जाता है, तब संसार हमारे लिए नहीं रह जाता। अतएव शोक मत करो, वन में अकेला विचरण करो, फल-कंद खाकर जीवन-यात्रा पूर्ण करो और आत्मशांति में जीयो।

इसके आगे कालकवृक्षीय मुनि ने क्षेमदर्शी नरेश से कहा कि तुम पुनः राज्य चाहते हो, तो अपने विरोधी राजा के साथ छल-कपट का व्यवहार करके उसे नष्ट कर दो। राजा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार दिया। इसके बाद मुनि ने राजा जनक और क्षेमदर्शी का समझौता करा दिया (-)।

. गणतंत्र राज्य और उसकी नीति

युधिष्ठिर ने एक नया प्रश्न उठाया–पितामह! गणतंत्र राज्य की नीति बताने की कृपा करें। मैं देखता हूं कि गणतंत्र राज्य के विनाश का कारण पारस्परिक फूट है। बहुत-से मनुष्यों का जो समुदाय है, उनके लिए किसी विचार या मंत्रणा को छिपाये रखना बहुत कठिन है। गणतंत्र राज्य में फूट न पड़े, वह कौन-सा उपाय है?

भीष्म ने कहा–गणों, कुलों तथा राजाओं में फूट पड़ने के दो ही कारण हैं, लोभ और अमर्ष। एक व्यक्ति लोभ करके बहुत संपत्ति तथा स्वामित्व अपनाना चाहता है, तो दूसरा अमर्ष कर एवं क्रोध कर उसका विनाश करना चाहता है। ये दोनों वर्ग एक दूसरे के नाश के लिए लग जाते हैं। यदि गणतंत्र के सैनिकों को समय से भोजन तथा वेतन न मिलें, तो ये भी फूट के कारण बनते हैं। आपसी फूट से कितने गणतंत्र नष्ट हुए हैं! आपसी फूट से विरोधी राजा सहज ही उन पर विजय कर लेते हैं। अतएव गणों एवं संघों को चाहिए कि वे परस्पर एकमत हों। जो आपस में संगठित हैं उनका दूसरे भी आदर करते हैं। संघबद्ध के लोग एक दूसरे को धोखा नहीं देते हैं। वे एक दूसरे की सेवा करते हुए सुखपूर्वक रहते हैं।

गणराज्य के श्रेष्ठ लोग अपने पुत्र तथा बंधुओं को भी दंड देते हैं, यदि वे कुमार्गगामी होते हैं तो। वे अपने लोगों को शिक्षित करते हैं और शिक्षित हो जाने पर उन्हें सेवा में लगाते हैं। गणराज्य के नागरिक गुप्तचर और दूत का काम करते हैं, राज्य के लिए गुप्त मंत्रणा करते हैं, विधान बनाते और कोष संग्रह करते हैं। इसलिए वे उन्नतिशील होते हैं। यदि गणतंत्र राज्य के लोगों में क्रोध, फूट, भय, दंड प्रहार तथा दूसरों को दुर्बल बनाने तथा मार डालने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, तो वे बिखर जाते हैं और तत्काल शत्रुओं के हाथों में पड़कर परतंत्र हो जाते हैं। इसलिए गणतंत्र के प्रधान अधिकारियों का सम्मान करना चाहिए क्योंकि उन्हीं के ऊपर व्यवस्था का भार रहता है। गण एवं संघ के सभी लोग गुप्त मंत्रणा सुनने के अधिकारी नहीं होते। मंत्रणा को गुप्त रखने तथा गुप्तचरों की नियुक्ति का कार्य प्रधान व्यक्तियों के ही अधीन होते हैं।

गणतंत्र के अधिकारियों को बारंबार मिलकर गणराज्य के हित के लिए चिंतन और प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाय तो संघ में फूट होकर उनमें कई दल हो जाते हैं और उनका विनाश होता है

"कुल में उत्पन्न हुए कलह की यदि कुल के वृद्ध पुरुषों ने उपेक्षा कर दी तो वह कलह गण में फूट डालकर समस्त कुल का नाश कर देता है। अतएव भीतरी भय दूर करके संघ की रक्षा करना चाहिए। यदि संघ में एकता बनी रहे, तो बाहर का भय निस्सार है; अर्थात बाहर की कोई शक्ति उसे बिगाड़ नहीं सकती। राजन! भीतर का भय एवं आपसी फूट संघ के नाश का कारण है। अकस्मात पैदा हुए क्रोध और मोह से अथवा स्वाभाविक लोभ से भी जब संघ के लोग परस्पर बातचीत करना बंद कर देते हैं, तो यही उनके पतन का लक्षण है। जाति और कुल में सभी समान हो सकते हैं, परंतु उद्योग, बुद्धि, रूप तथा संपत्ति में सबका एक समान होना असंभव है। शत्रु गणराज्य के लोगों में भेद–

बुद्धि पैदा करके और उनमें से कुछ लोगों को धन देकर भी पूरे संघ में फूट डालने की चेष्टा करते हैं। अतएव गणराज्य के नागरिकों तथा अधिकारियों को संघबद्ध एवं एकमत रहना अत्यंत आवश्यक है। एकता ही संघ का आधार है।" (अध्याय)।

मीमांसा

गणतंत्र, परिवार, समाज, पार्टी, संघ, कंपनी, कोई भी समूह हो, आपसी सौहार्द से बलवान होता है और आपस की फूट से नष्ट होता है। त्याग और विनम्रता से एकता रहती है और संपत्ति–स्वामित्व के लोभ तथा अहंकार और क्रोध से फूट पड़ती है। सभी संघ के मुखिया और सहायक लोग इस पर ध्यान दें! वैशाली के लिच्छवीगण में सात हजार सात सौ सात ( ) राजा माने जाते थे। वे अपनी फूट से मगधनरेश अजातशत्रु के हाथों पिस गये।

. माता, पिता और गुरु–सेवा का महत्त्व

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! बड़ा धर्म क्या है? भीष्म ने कहा–मुझे तो माता, पिता और गुरु की सेवा ही बड़ा धर्म लगता है। इन तीनों की आज्ञा मानना, इनकी सेवा करना तथा इनके बताये पथ पर चलना कल्याणकारी है। माता, पिता और गुरु तीनों लोक हैं। ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियां हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि है, माता दक्षिणाग्नि है और गुरु आह्वनीय अग्नि है। लौकिक अग्नियों से माता, पिता तथा गुरु का महत्त्व अधिक है। यदि माता, पिता और गुरु की सेवा की जाय तो इससे तीनों लोकों पर विजय हो जायगी। पिता की सेवा से लोक, माता की सेवा से परलोक तथा

. **कुलेषु कलहा जाताः कुलवृद्धैरुपेक्षिताः**
गोत्रस्य नाशं कुर्वन्ति गणभेदस्य कारकम्।
आभ्यन्तरं भयं रक्ष्यमसारं बाह्यतो भयम्
आभ्यन्तरं भयं राजन् सद्यो मूलानि कृन्तति।
अकस्मात् क्रोधमोहाभ्यां लोभाद् वापि स्वभावजात्
अन्योन्यं नाभिभाषन्ते तत्पराभवलक्षणम्।
जात्या च सदृशाः सर्वे कुलेन सदृशास्तथा
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूपद्रव्येण वा पुनः।
भेदाच्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः
तस्मात् संघातमेवाहुर्गणानां शरणं महत्।
(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक –)

गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक पर विजय होती है। अतएव इन तीनों की सेवा करे, इनकी आज्ञा माने और इनको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इन पर कोई दोषारोपण न करे। जो इनका अपमान करता है, उसका कहीं ठिकाना नहीं लगता। जो मनुष्य इन तीनों का आदर करता है, वह मानो सबका आदर करता है।

मेरा विश्वास है कि गुरु माता-पिता से बढ़कर है क्योंकि माता-पिता तो केवल देह के जन्मदाता तथा पोषक हैं, किंतु गुरु के उपदेश पाकर मनुष्य का दूसरा जन्म होता है। वह अध्यात्म का है, जो अजर-अमर है, दिव्य है। माता, पिता और गुरु से कुछ अपराध भी हो जाय, तो भी उनका अपमान न करे। माता, पिता और गुरु पुत्र और शिष्य का सदैव भला ही चाहते हैं। गुरु शिष्य का कवच (रक्षक) है। वह शिष्य को सत्स्वरूप का उपदेश देकर उसे असत्य से बचाता है। अतएव गुरु को ही पिता-माता समझे। उनका उपकार स्मरण रखकर कभी उनसे द्रोह न करे। जो लोग गुरु से विद्या एवं आत्मज्ञान पाकर उनका आदर नहीं करते, वे गर्भहत्यारे की तरह पापी हैं।

माता, पिता तथा गुरु कभी अपमान करने के योग्य नहीं हैं। जो माता, पिता और गुरु की सेवा नहीं करता उसका कहीं ठिकाना नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्यारा और गुरुघाती के पाप का प्रायश्चित हमारे सुनने में नहीं आता है (अध्याय)।

. सत्य-असत्य और धर्म का विवेचन

युधिष्ठिर ने पूछा-धर्म में स्थित रहने के लिए मनुष्य कैसा आचरण करे? क्या सत्य है और क्या असत्य है और सनातन धर्म क्या है? किस समय सत्य बोलना चाहिए और किस समय असत्य?

भीष्म ने कहा-सत्य बोलना अच्छा है। सत्य सर्वोच्च धर्म है; परंतु जिसे समझना अधिक कठिन है उसे मैं बता रहा हूं। यदि झूठ बोलकर किसी प्राणी की जान बचा ली गयी, तो वह झूठ ही सत्य का काम करता है। यदि हम सत्य बोलकर किसी प्राणी को संकट में डाल दिये, तो असत्य का काम हुआ। सत्य से रहित मनुष्य पतित है। सदैव सत्य का ही आधार ले। धर्म वह है जिससे लौकिक उन्नति के साथ आत्मकल्याण हो।

"धर्म वह है जो सबको धारण करता है, अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने सारी प्रजा को धारणकर रखा है। अतएव

जो जीवन को संतुलित रखे वह धर्म है, यही धर्मज्ञाता का निश्चय है।" प्राणियों की हिंसा न करना धर्म है। "वेद का कथन ही धर्म है, यह एक वर्ग के मनुष्यों का मत है; किंतु दूसरे लोग यह मत नहीं मानते। हम किसी भी मत की निंदा नहीं करते। यह तो सच है कि वेदों में भी सभी बातों का विधान नहीं है।"

किसी के धन को लुटेरे लूटना चाहते हैं। उन लुटेरों को उसका पता न बतावे, तो यह धर्म है। ऐसी जगह मौन रहे। यदि बोलना पड़े, तो झूठ बोलकर यदि किसी को लुटने से बचा लिया गया, तो यह झूठ ही सत्य का फल देता है। यदि शपथ खाने से पापियों से छुटकारा मिल जाय तो अच्छा है। जितना संभव हो पापियों के हाथों में धन न जाने दे। "प्राण–संकट के समय, विवाह के समय, दूसरे के धन की रक्षा के लिए तथा धर्म की रक्षा के लिए असत्य बोला जा सकता है।"

किसी के धन के नाश से भयंकर है किसी के जीवन का नाश करना (अध्याय)।

. दुखों से छूटने के उपाय

युधिष्ठिर ने पूछा–दुखों से कैसे छूटा जाय? भीष्म ने कहा–जो मन को वश में कर शास्त्रानुसार चारों आश्रमों में रहते हुए ठीक बरताव करते हैं, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो दंभहीन होकर संयत जीविका चलाते तथा विषयों से अपने को बचाते हैं, वे दुख से पार हो जाते हैं। जो दूसरों द्वारा दिये गये कटु वचन तथा निंदा को सह लेते हैं और उन्हें उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी दूसरों को नहीं मारते; स्वयं देते हैं, किंतु दूसरों से नहीं मांगते, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो प्रतिदिन अतिथियों का सत्कार करते हैं, किसी में दोष नहीं देखते और नित्य सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करते हैं, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो माता–

. **धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।**
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः

. **श्रुतिधर्म इति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः।**
न च तत्प्रत्यसूयामो न हि सर्वं विधीयते

. **प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्**
अर्थस्य रक्षणार्थाय परेषां धर्मकारणात्

(शांति पर्व, अध्याय)

पिता की सेवा करते हैं और दिन में नहीं सोते, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो मन, वाणी शरीर से कभी किसी को कष्ट नहीं पहुंचाते, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो राजा प्रजा का धन नहीं छीनता और अपने राज्य की सुरक्षा रखता है, वह भी दुखों से पार हो जाता है। जो नित्य यज्ञ करते और अपनी ही पत्नी में सीमित रहते हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो योद्धा युद्ध में निर्भय होकर धर्मपूर्वक विजय चाहता है, वह भी दुखों से पार पा जाता है। जो प्राण जाने के अवसर पर भी सत्य बोलना नहीं छोड़ते, वे सबके विश्वासपात्र होकर दुखों से पार पा जाते हैं।

जो दंभहीन होकर सत्कर्म करते हैं, सदा मीठे वचन बोलते हैं और अपने धन को सत्कर्मों में लगाते हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो तपस्या करते, कुमार अवस्था से ही ब्रह्मचर्य पालन करते, वेद-विद्या में उत्तीर्ण हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जिनके रजोगुण तथा तमोगुण शांत हो गये हैं और शुद्ध सतोगुण में स्थित हैं, वे भी दुखों से पार हो जाते हैं। जो स्वयं किसी से भय नहीं करते और किसी को भय नहीं देते तथा संसार के सभी प्राणियों को अपने समान मानते हैं, वे भी संकटों से पार हो जाते हैं। जो दूसरों के स्वामित्व-संपत्ति से ईर्ष्या-वश जलते नहीं हैं और विषयों से पूरा छूट गये हैं, वे श्रेष्ठ साधु पुरुष दुखों से पार हो जाते हैं। जो सभी देवताओं (सज्जनों) को प्रणाम करते हैं और सबके धर्म को सुनते हैं, जिनमें श्रद्धा और शांति विद्यमान हैं, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो दूसरों से सम्मान नहीं चाहते, अपितु दूसरों को सम्मान देते हैं और सम्माननीय पुरुष का नमस्कार करते हैं, वे दुखों से पार हो जाते हैं।

जो क्रोध पर नियंत्रण रखते, क्रोधी का क्रोध शांत करते, जो स्वयं किसी पर क्रोध नहीं करते, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो लोग जन्म से ही मधु, मांस और मदिरा का त्याग रखते हैं, वे दुखों से पार हो जाते हैं। जो स्वाद के लिए नहीं, जीवन-यात्रा के लिए भोजन करते हैं, जो वासना-तृप्ति के लिए नहीं, केवल संतान के लिए अपनी पत्नी में गर्भाधान करते हैं और जो सदा सत्य बोलते हैं, वे दुखों से तर जाते हैं। श्रीकृष्ण ही जगत के ईश्वर तथा नारायण हैं, जो उनकी उपासना करते हैं, वे दुखों से तर जाते हैं।

जो मनुष्य इस 'दुर्गातितरण' नामक अध्याय को पढ़ते, सुनते तथा ब्राह्मणों में इसकी चर्चा करते हैं, वे भी दुखों से तर जाते हैं। युधिष्ठिर! मैंने संक्षेप में उस कर्तव्य को बताया है जिसका पालन करने से मनुष्य लोक-परलोक में दुखों से रहित रहता है (अध्याय)।

मीमांसा

इस एक सौ दस ( )वें अध्याय में कुल तीस ( ) श्लोक हैं, जिनमें 'दुर्गाण्यतितरंति ते' टेक है, अर्थात वे दुखों से, कठिनाइयों से तर जाते हैं। अंत में श्रीकृष्ण को ईश्वर मानकर उनकी उपासना से दुखों से तरने की बात बतायी गयी है। स्पष्ट है कि यह किसी श्रीकृष्ण–भक्त की रचना है, किंतु इसमें काम की बातें बहुत हैं। इसके प्रक्षेप होने का लक्षण यह है कि इस अध्याय के अंत में पाठफल बताया गया है। पाठक को सब स्थानों से सद्‌गुण चुनना है, और इस अध्याय में वह भरपूर है।

. शेर और सियार के रूपक में मनुष्यों के स्वभाव का परिचय

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! ऊपर से कोमल तथा भीतर से कठोर और भीतर से कोमल और ऊपर से कठोर स्वभाव के मनुष्य संसार में होते हैं। हम उनको कैसे पहचानें?

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! शेर और सियार की एक प्राचीन कथा का उदाहरण जानकार लोग देते हैं। उसे मैं कहता हूं। तुम उसे सुनकर इस विषय में समझ जाओगे।

पुरानी बात है, पुरिका नाम का एक नगर था। उसमें धन–धान्य संपन्न पौरिक नाम का राजा था। वह बड़ा क्रूर एवं अधम था। वह प्राणियों की हिंसा करता रहता था। वह कुछ दिनों में मर गया और अपने घृणित कर्म–वश सियार की देह पाया। उसको अपने पूर्व जन्म की याद होकर बड़ा पश्चाताप और वैराग्य हुआ। अतएव वह दूसरे के दिये हुए मांस को भी नहीं खाता था। उसने जीव–हिंसा का त्यागकर दिया और सत्य बोलने लगा। वह वृक्षों से गिरे हुए फलों को खाता, कभी पत्ते ही खाकर पानी पी लेता; अतएव उसका जीवन संयमपूर्ण हो गया। वह श्मशान भूमि में रहता था। वहीं उसका जन्म हुआ था, अतः उसे उसी जगह में रहने की रुचि थी। उसके पवित्र आचार देखकर उसकी बिरादरी को यह सब अच्छा न लगा। इसलिए वे अपने मीठे वचनों से उसे विचलित करने का प्रयास करने लगे। उन्होंने कहा–भाई सियार! तू मांसाहारी प्राणी है, फिर अहिंसा, शाकाहार और सदाचार के चक्कर में क्यों पड़ गया? तुम मेहनत न करो। हम लोग तुम्हारे खाने के लिए मांस ला दिया करेंगे, तुम इस अहिंसा–सदाचार का चक्कर छोड़ दो।

सियार ने मीठे वचनों में कहा–बुरे आचरण के कारण हमारी कोई इज्जत नहीं मानता, हम पर विश्वास नहीं करता। कुल की प्रतिष्ठा अच्छे आचरण से होती है। इसलिए मैं उसी आचरण से रहना चाहता हूं जिससे मुझे सच्चा सुख मिले और हमारे कुल की प्रतिष्ठा बढ़े। विवेकवान के लिए श्मशान भूमि और आश्रम बराबर हैं। यदि कोई आश्रम में रहकर ब्रह्महत्या करे, तो क्या उसको पाप नहीं लगेगा और यदि कोई बिना आश्रम के गोदान करे तो क्या उसे पुण्य नहीं मिलेगा? वस्तुतः आत्मा की प्रेरणा से कर्म होते हैं। कोई आश्रम धर्म का हेतु नहीं होता। तुम लोग अपने गंदे स्वार्थ-वश मांसाहार में रचे-पचे हो। तुम लोगों की जीविका निंदनीय, असंतोषपूर्ण और अधर्ममय होने से दूषित है। यह लोक-परलोक दोनों के लिए दुखदायी है, अतएव मैं इसे पसंद नहीं करता हूं। फलतः सियार के इस पवित्र आचार-विचार की बातें चारों तरफ फैल गयीं।

सियार की सुकृति सुनकर एक प्रसिद्ध शेर ने उसके पास आकर उसका सत्कार किया, और उसे अपना मंत्री बनाने के लिए स्वयं उसका वरण किया। शेर ने कहा–सम्माननीय सियार! मैंने तुम्हारे सदाचार की सुकृति सुनी है। मैंने तुम्हें अपना मंत्री चुना है। तुम मेरे साथ चलो और मेरे घर पर अधिकाधिक भोगों का उपभोग करो। जो तुम्हें न पसंद हो, उसे छोड़ देना। परंतु यह ध्यान रखना, हम कठोर जाति के प्राणी हैं। अतएव तुम सदैव कोमल स्वभाव से रहना तो तुम्हारा मंगल होगा।

सियार ने विनम्रता से कहा–आपने जो बात कही, वह उत्तम है और जो आप धर्म और अर्थ-साधन में कुशल तथा शुद्ध स्वभाव वाले मंत्री खोज रहे हैं, यह भी ठीक है। ईमानदार मंत्री के बिना अकेला राजा राज्य नहीं चला सकता, और यदि भ्रष्ट मंत्री मिल गया तो राज-काज नष्ट होगा। महाभाग, इसके लिए आपको चाहिए कि जो आपसे प्रेम रखे, नीति के जानकार, अच्छे स्वभाव वाले, गुटबंदी से रहित, विजय की अभिलाषा वाले, लोभरहित, कपटनीति में प्रवीण, बुद्धिमान, स्वामी के काम बनाने में तत्पर एवं समर्पित और मननशील हों, ऐसे व्यक्तियों को आप सहायक एवं मंत्री बनावें और उनका वैसा ही सम्मान करें जैसे पिता और गुरु का किया जाता है। मृगराज! मैं तो संतोष को परम धन मानता हूं। भोग मुझे निस्सार लगते हैं, अपितु उपद्रवपूर्ण। अतएव मैं सांसारिक सुख-भोग तथा ऐश्वर्य नहीं चाहता।

सियार ने आगे कहा–आपके पुराने सेवकों का मेरे शील स्वभाव से मेल नहीं खायेगा। वे दुष्ट स्वभाव के हैं। वे मेरे विरोध में आपके कान भरते रहेंगे। आप महान हैं और मैं आत्मसंतुष्ट हूं। मैंने ऐसी जीविका अपनायी है जो

कष्टमय है। मैं राजकाज से अनभिज्ञ भी हूं। जो राजा के आधार में रहते हैं, उन्हें राजा के निंदित दोषों से जुड़ना पड़ता है। मेरे जैसे वनवासियों की दिनचर्या असंग और निर्भय है। जिसे राजा अपने सामने बुलाता है, उसके हृदय में जो भय उत्पन्न होता है, वह उनके मन में नहीं उत्पन्न होता जो वन में रहकर फल-मूल खाने वाले स्वच्छंद जीव हैं। भय-रहित साधारण भोजन उत्तम है, परंतु भय से भरा व्यंजन व्यर्थ है। राजा के हाथ से मारे जाने वाले सही अपराधी कम होते हैं, उनसे अधिक वे मारे जाते हैं जो झूठे लगाये हुए कलंक से अपराधी मान लिए जाते हैं। मृगराज! यदि आप मुझसे मंत्रित्व का काम लेना ही चाहते हैं, तो मेरी एक शर्त है, जिसके अनुसार आपको मेरे साथ बरताव करना होगा। वह यह है कि मेरे परिवार के साथ आपको सम्मानपूर्ण व्यवहार करना होगा। मेरी कही हुई हितैषी बातें आपको सुनकर वैसा बरताव करना होगा। मेरे लिए जो आपने जीविका निर्धारित की है, वह आपके ही पास रहे। मैं आपके मंत्रियों के साथ बैठकर कभी कोई बात नहीं करूंगा, क्योंकि दूसरे मंत्री मेरी ईर्ष्या करके व्यर्थ की बातें करेंगे।

सियार ने आगे कहा–राजन शेर! मैं अकेला एकांत में आपसे मिलकर हित की बात बताता रहूंगा। आप अपने जाति-भाइयों के हित-अहित की बात मुझसे न पूछिएगा। मुझसे सलाह लेने के बाद यदि आपके किसी मंत्री का दोष सिद्ध हो, तो भी उन्हें प्राणदंड न दीजिएगा। शेर ने कहा–अच्छा, ऐसा ही होगा। शेर ने सियार का बड़ा सम्मान किया। अतएव सियार शेरराज के यहां बुद्धिदायक मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित हो गया।

सियार बड़ा अच्छा काम करने लगा, इसलिए उसकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि राजा के पुराने सचिव-सेवक सियार के प्रति द्वेष करने लगे। वे सियार के पास आते और उससे मीठी-मीठी बातें करके अपने समान दोष के मार्ग पर उसे चलने के लिए प्रेरणा देते। पहले के सचिव-सेवक धन का गोलमाल करने वाले थे। सियार के कड़े नियंत्रण से वे अब ऐसा नहीं कर पाते थे। अतएव उनकी यही इच्छा थी कि सियार हम लोगों के सरीखा घूसखोर तथा राजकीय धन का गोलमाल करने वाला बन जाय। इसके लिए वे सियार को बहुत-सा धन देने का प्रलोभन देते। सियार अपने त्याग के सिद्धांत में दृढ़ रहा। तब वे गंदे विचार के अधिकारी लोग उसे दूसरी तरह गिराने का षड्यंत्र करने लगे।

एक दिन वे लोग शेर के खाने के लिए जो मांस तैयार कर रखा था, उसको वहां से उठाकर सियार के घर में रख दिये। सियार को राजनयिकों का यह

षड्यंत्र जानने में आ गया, परंतु वह चुप रहा। सियार ने सिंह से यह शर्त करा ली थी कि मेरे विरोध में चुगुली करने वालों के फंदे में आप न पड़िएगा और मुझे कष्ट न दीजिएगा।

शेर को भूख लगी और भोजन के लिए उठा, तो वहां मांस नहीं था। शेर ने सेवकों को आज्ञा दी कि चोर की खोज करो। जिनकी यह चाल थी उन्होंने कहा–हुजूर! आपके बुद्धिमान मंत्री सियार महोदय ने ही आपके भोजन का अपहरण किया है। शेर ने क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि सियार को मार दो। उन मक्कार राजसेवकों ने कहा–महाराज! जब वह आपका भोजन चुरा सकता है, तब वह कौन-सा अपराध नहीं कर सकता है? आपने उसके बारे में जो पहले सुन रखा था, वह वैसा नहीं है, वह बातों से धर्मात्मा बनता है, परंतु आचरण में क्रूर है। यदि आपको विश्वास न हो, तो हम अभी उसके घर से वह मांस ले आते हैं जो आपका भोजन है। वे सियार के घर से मांस उठा लाये। शेर ने आज्ञा दी कि सियार को प्राणदंड दे दिया जाय।

शेर की उक्त बात सुनकर उसकी माता उसे समझाने लगी कि बेटा! इसमें तुम्हारे पुराने सेवकों का कपटपूर्ण जाल दिखायी देता है, अतएव तुम्हें इनकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। स्पर्धावश मलिन मन वाले दूसरों पर झूठे दोष मढ़ते हैं, किसी की श्रेष्ठता देखकर ईर्ष्या करते हैं। वैर उत्पन्न होने के यही सब कारण हैं। कोई कितना ही पवित्र तथा उद्योगशील हो, उस पर लोग आक्षेप कर ही देते हैं। निर्मल संत के भी शत्रु, मित्र और उदासीन तीन पक्ष पैदा हो जाते हैं। लोभी लोग निर्लोभी से, कायर वीरों से, मूर्ख विद्वानों से, दरिद्र धनवानों से, पापी धर्मात्माओं से और कुरूप सुंदर से द्वेष करते हैं। विद्वान भी अविवेकी, लोलुप और कपटी होते हैं जो बृहस्पति के समान बुद्धि रखने वाले निर्दोष व्यक्ति में भी दोष खोज लेते हैं। एक ओर तो तुम्हारे सूने घर से मांस की चोरी हुई है और दूसरी तरफ जिस पर मांस-चोरी का दोष लगाया जाता है वह किसी के देने पर भी मांस नहीं खाता है; अतएव इस पर विचार करो। संसार में ऐसे बहुत लोग होते हैं जो दिखते हैं सज्जन, परंतु रहते हैं दुर्जन; और ऐसे लोग भी हैं जो दिखने में ऊटपटांग होते हैं परंतु आचरण में सही होते हैं। लगता है कि आकाश औंधी कड़ाही है और जुगनू अग्नि है, परंतु न आकाश औंधी कड़ाही की तरह है और न जुगनू आग है। अतएव प्रत्यक्ष वस्तु की भी परीक्षा करना चाहिए। जांच-परख कर काम करने वाले को पीछे पछताना नहीं पड़ता है। बेटा! बलवान राजा के लिए दूसरे को मरवा डालना बड़ी बात नहीं है; परंतु शक्तिशाली मनुष्य यदि क्षमा करता है तो यह उसकी महती शोभा है। इससे

उसका यश बढ़ता है। बेटा! तुमने इस सियार को अपना मंत्री बनाया है। तुम्हारे सामंतों में भी इसकी सुकीर्ति फैली है। अच्छा मनुष्य बड़ी कठिनाई से मिलता है। यह सियार तुम्हारा हितैषी मित्र है। अतएव तुम्हें इसकी रक्षा करना चाहिए। केवल दूसरों द्वारा मिथ्या दोषारोपण से दंड देना अपना ही पतन करना है।

उसी समय एक धर्मात्मा सियार जो शेर का गुप्तचर था, आकर उससे मंत्री सियार की निर्दोषता की बात कह सुनायी और बताया कि आपके पुराने राज कर्मचारियों और अधिकारियों का यह सब षड्यंत्र है। इससे शेर को सियार की सच्चरित्रता समझ में आ गयी। उसने सियार को इस अभियोग से मुक्त कर दिया और उसको बारंबार प्रेम से गले लगाया। इसके बाद नीतिशास्त्र के ज्ञाता सियार ने शेर से आज्ञा लेकर अमर्ष से दुखी होकर उपवास करके प्राण त्यागने का विचार किया। शेर ने सियार को समझा–बुझाकर इस कार्य से रोक दिया। शेर की आंखें सियार की सच्चाई से खिल उठीं। सियार ने देखा कि मेरा मालिक मेरे प्रति स्नेह से आकुल है। अतएव सियार ने अपने राजा शेर का नमस्कार करके गद्‌गद वाणी में अपना मनोभाव प्रकट करना आरंभ किया–

महाराज शेर! पहले आपने मेरा सम्मान किया और पीछे मुझे अपमानित कर दिया, और मुझे शत्रु की दशा में डाल दिया, अतएव अब मैं आपके पास रहने लायक नहीं हूं। जो अपने पद से गिरा दिये जाने के कारण असंतुष्ट हों, अपमानित किये गये हों, जो एक बार राजा से पुरस्कृत होकर दूसरों के द्वारा झूठे कलंक लगाये जाने के कारण आदर से वंचित कर दिये गये हों, जो क्षीण, लोभी, क्रोधी, भयभीत और धोखे में डाल दिये गये हों, जिनका सब कुछ छीन लिया गया हो, जो मानी हों, जिनकी आमदनी छिन गयी हो, जो महत्त्वपूर्ण पद पाने के अभिलाषी हों, जिन्हें सताया गया हो, जो राजा पर आने वाले संकट की प्रतीक्षा करते हों, छिपे रहते हों, मन में कपट भाव रखते हों, वे सभी सेवक शत्रुओं के काम बनाने वाले होते हैं।

सियार ने आगे कहा–जब मैं एक बार अपने पद से अपमानित और भ्रष्ट कर दिया गया, तब आप पुनः मुझ पर कैसे विश्वास करेंगे? मैं भी कैसे आपके पास रह सकूंगा? आपने पहले मेरी परीक्षा लेकर सम्मानपूर्वक मुझे मंत्री पद पर बैठाया और पीछे मेरा अपमान कर दिया। आपने अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन किया। पहले भरी सभा में शीलवान कहकर जिसका परिचय दिया गया हो, उसका दोष बताकर उसे अपमानित नहीं करना चाहिए। एक बार आपसे अपमानित हो जाने पर आप कैसे मेरे ऊपर विश्वास करेंगे और मैं कैसे आप पर विश्वास करूंगा? ऐसी स्थिति में मुझे सदैव भय बना रहेगा। आप मुझ पर

शंकाशील रहेंगे और मैं आपसे भयभीत रहूंगा। मेरे में दोष ढूंढने वाली आपकी नौकरशाही मौजूद ही है। ये न मेरे ऊपर किंचित स्नेह रखते हैं और न मैं इन्हें संतुष्ट कर पाऊंगा। इसके साथ यह राजमंत्री का कर्म भी अनेक छल-कपट से पूर्ण है। प्रेम का बंधन जल्दी नहीं टूटता है, और जब एक बार टूट जाता है, तब जुड़ना कठिन हो जाता है। जो प्रेम बारंबार टूटता और जुड़ता है, वह असली प्रेम नहीं होता है। ऐसे मनुष्य दुर्लभ हैं जो अपने या किसी अन्य के लाभ में न रहकर स्वामी के हित में प्रेम रखते हों। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रेम करने वाले तो बहुत लोग हैं, परंतु शुद्ध प्रेम रखने वाले दुर्लभ हैं। योग्य मनुष्य की परख कर पाना राजाओं के लिए कठिन है, क्योंकि मनुष्य का चित्त चंचल होता है। सैकड़ों में कोई एक होता है जो सुयोग्य और संदेह से परे हो। मनुष्य के उन्नति-पतन होते रहते हैं, परंतु किसी को महत्त्व देकर फिर उसे नीचे गिराना छिछिली बुद्धि का लक्षण है।

इस प्रकार सियार ने धर्म, अर्थ, काम और युक्तियों से पूर्ण शील वचन कहकर शेर को प्रसन्न कर लिया और उसकी आज्ञा लेकर वन में चला गया। सियार बड़ा बुद्धिमान था। वह शेर के प्रस्ताव को न मानकर वन में आमरण अनशन पर बैठ गया और अंत में शरीर त्यागकर स्वर्ग-धाम में जा पहुंचा (अध्याय)।

मीमांसा

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यह कथा मनुष्य के ही स्वभाव का चित्रण करने के लिए कल्पित की गयी है। शेर-सियार में ऐसी बुद्धि और वाणी कहां हैं जो इस कथा में चित्रित है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं-"यह सुंदर आख्यान गुप्तयुग के नीतिशास्त्र लेखकों की रचना जान पड़ती है। इसकी परिभाषा और शब्दावली उसी युग की है।"

. आलस्य-त्याग और विनम्रता की सीख के लिए ऊंट, समुद्र और नदियों का उदाहरण

युधिष्ठिर ने पूछा-पितामह! राजा को क्या करना चाहिए? वह किस कर्तव्य से सुखी रह सकेगा?

. **ईसा के तीन सौ वर्ष बाद।**

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

भीष्म ने कहा–बेटा! इसके विषय में मैं एक ऊंट का उपाख्यान सुनाता हूं जो प्राचीन काल से चला आया है। एक ऊंट था। उसने बड़ी तपस्या की। ब्रह्माजी उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर आये और उन्होंने ऊंट से कहा कि जो वर मांगना हो मांग लो। ऊंट ने कहा–भगवन! मेरी गर्दन सौ योजन लंबी हो जाय, जिससे मैं अपने स्थान पर रहते ही दूर–दूर के चारा को खा लूं। ब्रह्मा जी 'एवमस्तु' कहकर चले गये। ऊंट की गर्दन सौ योजन से भी अधिक लंबी हो गयी। अब वह आलसी बना अपनी जगह पर रहते हुए दूर–दूर का चारा चरता रहता था।

एक बार दूर किसी गुफा में उगे हुए चारे को चरने के लिए उसमें उसने अपनी लंबी गर्दन डाल रखी थी। इतने में आंधी–पानी आया। एक सियार और सियारिन आंधी–पानी के थपेड़े से पीड़ित होकर उस गुफा में घुस गये जहां ऊंट की गर्दन थी। वे भूखे थे, और देखे कि यह तो खाने योग्य पदार्थ है। अतएव वे ऊंट की गर्दन को काट–काटकर खाने लगे। जब तक ऊंट अपनी गर्दन गुफा से निकालता, तब तक वह कट गयी, और ऊंट मर गया। ऊंट अपनी मूर्खता से आलसी होकर मारा गया।

अतएव युधिष्ठिर! सदैव आलस्य–रहित होकर श्रमशील रहना चाहिए। मनुष्य को इंद्रियजित होकर बुद्धि के बल से काम करना चाहिए। *'बुद्धिमूलं विजयं मनुरब्रवीत्'*–मनु ने कहा है कि विजय का मूल बुद्धि है। अतएव बुद्धि–बल से किया गया कार्य श्रेष्ठ है, बाहुबल से किया गया कार्य मध्यम है, पैर के बल पर किया गया कार्य अधम है और सिर पर भार ढोने का काम निम्नतम है।

जिसके सहायक अच्छे हैं, जो उनसे राय लेता है और अच्छी तरह समझबूझकर कार्य करता है, वह अपने काम में सफल होता है।

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! स्थायित्व किसमें होता है? भीष्म ने कहा–एक बार समुद्र ने सरिताओं से पूछा कि तुम सब बड़े–बड़े वृक्षों को उखाड़कर मेरे पास बहा लाती हो, परंतु अपने तट पर ही लगे बेंत को कभी उखाड़ या तोड़कर नहीं लाती हो। मैं कभी किसी बेंत को बहते नहीं देखता।

नदियों में श्रेष्ठ गंगा ने कहा–पेड़ अकड़कर खड़े रहते हैं, इसलिए वे हमारी धाराओं से उखड़कर बह चलते हैं, किंतु बेंत हमारी आती हुई धाराओं के सामने झुक जाते हैं, इसलिए उनको उखाड़ा नहीं जा सकता। जो पौधे, वृक्ष या लता, गुल्म वायु और जल के वेग से झुक जाते हैं और वेग शांत होने पर सिर उठाते हैं, उनकी कभी हार नहीं होती। इसी प्रकार जो मनुष्य समय विपरीत देखकर झुक जाता है, उसका पराभव नहीं होता (अध्याय –)।

मीमांसा

बच्चों को समझाने के लिए जैसे कहानियां गढ़ी जाती हैं, वैसे ही यहां लेखक ने कहानियां गढ़कर बहुत ऊंची बात समझायी है। उन्नति चाहने वाले तथा स्थिरता की इच्छा वाले परिश्रमी और विनम्र रहें।

. विवेकवान अपने निंदक की उपेक्षा कर देता है

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! यदि कोई मधुर या कटु शब्दों में सभा के बीच निंदा करने लगे, तो उसके साथ कैसा बरताव करे?

भीष्म ने कहा–शुद्ध अंत:करण के मनुष्य मूर्ख के मुख से निंदा सुनकर निर्विकार भाव से सह लेते हैं। जो मनुष्य निंदा करने वाले के ऊपर क्रोध नहीं करता उसने अपना सारा पाप धो डाला। अच्छा मनुष्य निंदक की उसी प्रकार उपेक्षा कर देता है जिस प्रकार टिटिहरी के टांयटांय शब्द पर कोई ध्यान नहीं देता। निंदक स्वयं सबकी दृष्टि से गिर जाता है।

ऐसे निंदक–अहंकारी तो पीछे लोगों से कहेंगे कि मैंने उसे भरी सभा में ऐसी बातें सुनायी कि वह लज्जा से गड़ गया, उसका मुख सूख गया, वह अधमरा हो गया। परंतु ऐसे नराधम की उपेक्षा कर देना ही शांति का रास्ता है। यह समझ ले कि जैसे वन में कौआ कावं–कावं करता है, वैसे मूर्ख मनुष्य अकारण निंदा करता है। यदि ऐसे मनुष्य को उत्तर दिया जाय तो केवल कलह बढ़ेगा, और कोई लाभ नहीं होगा। मयूर जब नाच दिखाता है, तब वह अपने गुप्त अंगों को भी प्रदर्शित कर देता है, वैसे मूर्ख मनुष्य दूसरे की बुराई करके अपने दुर्गुणों को ही प्रकट करता है।

जिसके लिए कुछ भी कहना तथा करना असंभव नहीं है, ऐसे मूर्ख मनुष्य से भला मनुष्य बात भी नहीं करता। जो सामने तो प्रशंसा करता है और पीछे निंदा करता है वह कुत्ते के समान है। जैसे सांप अपना फन ऊंचा उठाकर अपना रोब दिखाता है, वैसे मूर्ख मनुष्य ही जन समुदाय में किसी की निंदा करके अपने दोषों को प्रकट करता है। निंदक–दुष्ट से बदला लेना वैसा ही है जैसे गधा का राख में लोटना। परनिंदक भेड़िया है। वह सदा अशांत बना रहता है। वह मतवाले हाथी के समान चीत्कार करता है और कुत्ते के समान काटने दौड़ता है। श्रेष्ठ पुरुष ऐसे की उपेक्षा कर देते हैं। वह विनय तथा संयम से दूर शत्रुता का व्रत लेकर घूमता है। यदि नीच मनुष्य कुपित हो जाय तो सज्जन को थप्पड़ मार सकता है, मुंह पर धूल एवं भूसी झोंक सकता है और दांत दिखाकर डरा सकता है। उसके लिए सारी बुरी चेष्टाएं संभव हैं।

विवेकवान दूसरों द्वारा किया हुआ अपमान निर्विकार भाव से सहकर संतुष्ट रहता है। वह दुख का भागी नहीं होता (अध्याय)।

. सेवक तथा मंत्री के गुण, राजकाज और दंड की उपादेयता

युधिष्ठिर ने पूछा–परिवार, राष्ट्र तथा प्रजा के कल्याण के लिए हमें क्या करना चाहिए। राजा के मंत्री, सेवक आदि कैसे होने चाहिए? वह बिना सहायकों के अकेला राज्य की रक्षा नहीं कर सकता।

भीष्म ने कहा–बिना सहायकों के राज्य तो क्या, किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। जिसके मंत्री तथा सभी सेवक कुलीन, ज्ञान–विज्ञान–कुशल, हितैषी, स्नेही, धन देकर जिसे फोड़ा न जा सके, सदा राजा के साथ रहने वाले, अच्छी राय देने वाले, भविष्यद्रष्टा, समय के ज्ञान में निपुण तथा बीती बात के लिए शोक न करने वाले होते हैं, वही राजा राज्य को ठीक चला सकता है। जो राजा के सुख में सुखी तथा दुख में दुखी होते हैं, राज्यकोष बढ़ाने की चिंता करते हैं, और सत्यवादी होते हैं, उन्हीं से राज्य ठीक चल सकता है। जो राजा राजधर्म जानता है और अच्छे सहायकों को जुटाकर रखता है, वह राज्य चलाने में सफल होता है। जो राजा संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी–भाव एवं समाश्रय नामक छह गुणों का उपयोग करता है, वह धर्मपूर्वक राज्य करता है (अध्याय)।

दुर्जन के साथ चाहे जितना अच्छा व्यवहार करो वह अपने कुल के अनुसार व्यवहार करता ही है। एक ऋषि के आश्रम में एक कुत्ता रहता था। वह चीते से डरता था, तो ऋषि ने उसे चीता बना दिया। इसके बाद ऋषि ने उसे क्रमशः बाघ, हाथी, शेर और शरभ बना दिया। वह जब ऋषि पर ही हमला किया, तब उन्होंने उसे पुनः कुत्ता बना दिया। यह कल्पित कहानी इस बात को समझाने के लिए है कि नीच प्रकृति के मनुष्य के साथ उपकार करने पर भी वह अच्छे आचरण का नहीं होता है। अतएव दुष्ट सेवक से राजा या किसी को भी अलग रहना चाहिए।

बुद्धिमान राजा को चाहिए कि पहले अपने सेवकों की सच्चाई, शुद्धता, सरलता, स्वभाव, शास्त्र–ज्ञान, सदाचार, कुलीनता, जितेंद्रियता, दया, बल, पराक्रम, प्रभाव, विनय, क्षमा आदि का पता लगाकर जो सेवक जिस कार्य के योग्य हो उसे उसमें लगावे और उसकी पूर्ण रक्षा एवं निर्वाह का प्रबंध रखे।

राजा उसी को मंत्री बनावे जो कुलीन, सुशिक्षित, विद्वान, ज्ञान-विज्ञान में पारगत, सब शास्त्रों के तत्त्वों का ज्ञाता, सहनशील, अपने देश का निवासी, कृतज्ञ, बलवान, क्षमाशील, मन पर विजयी, जितेंद्रिय, निर्लोभ, प्राप्त में संतुष्ट, स्वामी तथा उसके मित्र की उन्नति चाहने वाला, देश-काल का ज्ञाता, आवश्यक वस्तुओं के संग्रह में तत्पर, आलस्यरहित अपने राज्य में गुप्तचर लगाये रखने वाला, संधि और विग्रह के अवसर को समझने वाला, राजा के धर्म, अर्थ और काम की उन्नति का उपाय जानने वाला, नगर और ग्रामवासी का प्रिय, खाई और सुरंग खुदवाने तथा मोर्चाबंदी करने की कला में कुशल, अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने में प्रवीण, शक्ल-सूरत और चेष्टा को देखकर ही मन के भाव को समझ लेने वाला, शत्रुओं पर चढ़ाई करने के अवसर को समझने में होशियार, हाथी की शिक्षा का ज्ञाता, अहंकाररहित, निर्भीक, उदार, संयमी, बलवान, उचित कार्य करने वाला, शुद्ध, पवित्र पुरुषों से युक्त, प्रसन्नमुख, प्रियदर्शन, नेता, नीतिकुशल, श्रेष्ठ गुण और उत्तम चेष्टा वाला, उद्दंडतारहित, विनयशील, स्नेही, मृदुभाषी, धीर, शूरवीर, महान ऐश्वर्य से संपन्न और देश-काल के अनुसार कार्य करने वाला हो।

जो राजा ऐसे योग्य व्यक्ति को मंत्री बनाता है और उसका कभी अपमान नहीं करता, उसका राज्य चंद्रमा की चांदनी के समान प्रकाशित होता है। राजा को स्वयं उक्त गुणों से संपन्न होना चाहिए। जो जाति-भाइयों का अपमान नहीं करता, सेवकों का निरादर नहीं करता और कार्य-साधन में कुशल है, उसी राजा के अधिकार में पृथ्वी रहती है। जिसमें आलस्य, निद्रा, दुर्व्यसन तथा अधिक हास्यप्रियता दुर्गुण नहीं रहते हैं, वही राज्य को ठीक चला सकता है। बड़े-बूढ़ों की सेवा करने वाला, उत्साही, सारी प्रजा का रक्षक और धर्माचरण में तत्पर राजा ठीक राज्य चला सकता है। जो शत्रुओं की दुर्बलता को समझे, मित्रों का उपकार करे और सेवकों की विशेषता समझे, वही राज्य के फल का भागी होता है।

भीष्म ने आगे कहा कि जो जिस योग्य हो उसे वहां लगाये। कुत्ते को ऊंचा स्थान न दे और शरभ को नीचा स्थान न दे। तात्पर्य है कि जो जिस योग्य है उसे उसी स्थान पर नियुक्त करे। राजा का प्रधान धर्म है सभी प्राणियों की रक्षा करना। मोर सांप खाता है, परंतु विचित्र पंख वाला सुंदर होता है, वैसे धर्मज्ञ राजा को समय-समय से अपना विचित्र रूप प्रकट करना चाहिए। राजा मध्यस्थ रहकर तीक्ष्णता, कुटिलनीति, अभयदान, सत्य, सरलता और श्रेष्ठ भाव का आधार ले। राजा अपराधी को दंड देने के लिए उग्र रूप तथा दीनों एवं प्रजा की रक्षा करने के लिए दयालु रूप रखे।

एक सौ बीस ( )वें अध्याय में राजधर्म के सार रूप का वर्णन किया गया है, जिसमें आज के प्रजातंत्र युग में अनेक बातों की आवश्यकता नहीं है। फिर आगे के दो अध्यायों में दंड की उत्पत्ति और महत्ता बतायी गयी है। दंड को व्यवहार कहा गया है। *'विगतः अवहारः धर्मस्य येन सः व्यवहारः।'* अर्थात दूर हो गया है धर्म का अवहार (लोप) जिसके द्वारा, वह व्यवहार है। दंड धर्म को सुरक्षित रखता है। दंड ही प्रजा को उद्दंडता से बचाता है। दुष्टों का दमन करना ही दंड का मुख्य उद्देश्य है। दंड का मतलब यह नहीं है कि राजा स्वर्णमुद्राओं से अपना खजाना भरे। दंड के तौर पर स्वर्णमुद्राएं लेना तो उसका बाहरी अंग है (अध्याय –)।

मीमांसा

संधि (मेलमिलाप), विग्रह (युद्ध), यान (चढ़ाई करना), आसन (रुक जाना), द्वैधी भाव (दुरंगी नीत) तथा समाश्रय (आश्रय लेना)।

. धर्म, अर्थ और काम पर विचार

युधिष्ठिर ने पूछा–धर्म, अर्थ और काम के विषय में आप बतायें। इनका मूल क्या है? इन तीनों की उत्पत्ति का कारण क्या है? ये कहीं एक साथ मिले हुए रहते हैं और कहीं अलग–अलग क्यों रहते हैं?

भीष्म ने कहा–जब मनुष्य शुद्ध चित्त से धर्मपूर्वक किसी अर्थ की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होते हैं, उस समय उचित समय, कारण तथा कर्मानुष्ठान से धर्म, अर्थ और काम तीनों एक साथ मिले हुए प्रकट होते हैं। धर्म अर्थ की प्राप्ति का कारण है और काम अर्थ का फल है; परंतु इन तीनों का मूल कारण है संकल्प, और संकल्प विषयरूप है। सभी विषय इंद्रियों के भोग के लिए हैं। वह धर्म, अर्थ और काम का मूल है। इनसे छूट जाना ही मोक्ष है। धर्म से शरीर की रक्षा होती है। धर्म का उपार्जन करने के लिए अर्थ की आवश्यकता है और काम का फल है रति। ये सब रजोगुण रूप हैं। धर्म आदि का सेवन कल्याण के लिए होना चाहिए। आसक्ति और फल का त्याग करके इनका सेवन करे। आसक्ति और फलेच्छा त्यागकर यदि धर्म, अर्थ और काम का सेवन करे, तो इसका फल कल्याण है। धर्म से धन होता है और धन से धर्म, इस तथ्य को मनुष्य मोहवश समझ नहीं पाता, इसलिए इनका अच्छा फल वह नहीं पाता।

फल की इच्छा धर्म का मल है, संग्रह अर्थ का मल है, और विलास काम का मल है। यदि ये तीनों दोषरहित हों तो कल्याणप्रद हैं।

बुद्धि का नाश ही मोह है। इससे धर्म और अर्थ नष्ट होते हैं और मनुष्य दुराचारी हो जाता है। यदि राजा दुराचारियों पर नियंत्रण नहीं कर पाता, तो प्रजा घर में रहने वाले सर्प की भांति राजा से उद्विग्न हो जाती है, फिर प्रजा राजा का साथ नहीं देती। साधु-सज्जन भी राजा को त्याग देते हैं। ऐसा राजा अंततः प्रजा से ही मारा जाता है। यदि राजा जीवित भी रहे तो पदभ्रष्ट होने से वह मरण के समान होता है।

ऐसी अवस्था में राजा को चाहिए कि वह पाप पर ग्लानि करे, सत्शास्त्रों का अध्ययन करे और पुण्यात्माओं का सत्कार करे। धर्म के आचरण में मन लगावे। अच्छे लोगों की संगत करे। क्षमाशील सत्पुरुषों की सेवा करे। मीठे वचन और सत्कर्म करके लोगों को प्रसन्न करे। पापियों पर नियंत्रण करे। वह लोगों से यही कहे कि मैं आपका हूं तथा आप मेरे हैं। जो इस प्रकार अपना विनम्र आचरण बना लेता है, वह निष्पाप हो जाता है (अध्याय)।

. शील और आशा पर विवेचन

एक सौ चौबीस ( )वें अध्याय में इंद्र और प्रह्लाद की कथा के उपोद्घात में केवल शील का महत्त्व बताया गया है। मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी प्राणी से वैर न करना, सब पर दया करना और यथाशक्ति दान देना, यह शील कहलाता है। इसकी सब प्रशंसा करते हैं। जो दूसरे के लिए हितकर न हो तथा जिसे करने में संकोच का अनुभव हो वह काम नहीं करना चाहिए। जिस कर्म की भरी सभा में प्रशंसा हो वह शील है। यद्यपि कभी-कभी शीलहीन मनुष्य भी धन पा जाते हैं, परंतु वे शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। शीलहीन जड़-मूल से नष्ट हो जाते हैं।

शील के आधार पर ही धर्म, सत्य, सदाचार, बल और धन रहते हैं। यहां पर वासुदेवशरण अग्रवाल ने बौद्धों के शील का प्रभाव माना है। वे लिखते हैं– "इस प्रकार सत्य और शील पर बल देने वाले बौद्धधर्म की ओर संकेत है। लेखक ने राजधर्म के अंत में बुद्ध के उपदेश का भी उल्लेख करना उचित समझा। वृत्त या धर्म के विषय में बौद्ध और ब्राह्मण दृष्टिकोण का समन्वय किया गया है। शील, धर्म, सत्य, वृत्त (सदाचार), बल ये सब शील से उत्पन्न होते हैं।" ( )।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

युधिष्ठिर ने आशा विषयक प्रश्न किया है। उन्होंने कहा–आशा पर्वत तथा आकाश के समान विशाल है। इस पर लंबी–चौड़ी कहानी गढ़ी गयी है। उसका सार इतना ही है कि आशा में बंधा हुआ मनुष्य निंरतर असंतुष्ट रहता है। जो किसी वस्तु की याचना नहीं करता है, वह महान है। जिसके मन में कोई आशा नहीं है वह मुक्त है, स्थिर सुख भोगने का भागी है। आशा मनुष्य को दुर्बल बना देती है, और दुखी कर देती है। जो सारी आशाओं से मुक्त है वह कृतार्थ है (अध्याय –)।

मीमांसा

आशावान होना चाहिए और आशा त्यागकर रहना चाहिए, इन दोनों बातों का महत्त्व है। धनोपार्जन, विद्योपार्जन तथा किसी भी कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए आशावान रहना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि लोग सफल होते हैं, तो मैं क्यों नहीं सफल होऊंगा! इस प्रकार सफलता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, और सफलता–असफलता सभी स्थितियों में आत्मसंतुष्ट रहना चाहिए।

दूसरी बात है, आशा त्यागकर रहना चाहिए। भोगों की जो आशाएं हैं, वे ही मनुष्य को जलाती हैं। समुद्र की थाह लग सकती है किंतु अविवेकी मन की आशा की थाह नहीं लग सकती। जो भोगों की आशा में जीता है वह निरंतर मन से जलता रहता है। अतएव स्थिर सुख चाहने वालों को भोगों की सारी आशाएं छोड़कर अपने आप में संतुष्ट रहना चाहिए।

. आपत्तिकाल में राजा प्रजा से धन का संग्रह करे

राजधर्म–खंड के अंत में युधिष्ठिर का एक प्रश्न आता है कि यदि राजा के शत्रु अधिक हो जायं, मित्र साथ छोड़ दें, सेना तथा खजाना नष्ट हो जाय, तो ऐसी स्थिति में राजा क्या करे? भीष्म बताते हैं–जैसे निर्जल स्थान में मनुष्य जमीन खोदकर जल निकाल लेता है, वैसे राजा प्रजा से यथासाध्य धन लेकर अपना खजाना बढ़ावे। क्षत्रिय को भीख मांगना उचित नहीं है। अतएव आपत्ति काल में राजा प्रजा से बलपूर्वक धन ग्रहण करे। संसार में कोई ऐसी वृत्ति नहीं है जो सर्वथा हिंसाशून्य हो। यहां तक कि वन में रहने वाले मुनि की भी वृत्ति सर्वथा हिंसारहित नहीं है। ललाट में लिखी हुई वृत्ति का भरोसा करके ही कोई जीवन–निर्वाह नहीं कर सकता। अतएव प्रजापालन की इच्छा रखने वाले राजा का भाग्य के भरोसे रहकर निर्वाह चलाना असंभव है। अतएव आपत्तिकाल में

राजा और प्रजा दोनों को एक दूसरे को सहयोग करना चाहिए। जैसे प्रजा पर संकट आने पर राजा खजाने का धन लुटाकर उसकी रक्षा करता है, वैसे राजा पर संकट आने पर प्रजा को अपना धन राजा को देना चाहिए।

समझदार मनुष्य खाने के अन्न में से भी आगे खेत में बोने के लिए बीज बचाकर रखता है। जिसके राज्य की प्रजा तथा आगंतुक परदेशी मनुष्य जीविका के बिना कष्ट पाते हों, उस राजा को धिक्कार है। राजा की जड़ है सेना और खजाना। इसमें खजाना ही सेना की जड़ है। धन-संग्रह किये बिना सेना की व्यवस्था नहीं हो सकती। अतएव आपत्तिकाल में प्रजा को पीड़ा देकर भी राजा को धन-संग्रह करना बुरा नहीं है।

अकार्यमपि यज्ञार्थं क्रियते यज्ञकर्मसु (,)। अर्थात यज्ञकर्मों में यज्ञ के लिए वह कार्य भी किया जाता है जो करने योग्य नहीं रहता। इसी प्रकार आपत्तिकाल में राजा प्रजा से धन-संग्रह करे। धन का त्याग और धन का संग्रह दोनों एक साथ नहीं हो सकता। मैं वनवासी त्यागियों के पास कहीं धन का संग्रह नहीं देखता। राजा के लिए राज्य की रक्षा के समान दूसरा धर्म नहीं है। यहां जिस धर्म की चर्चा की गयी है वह केवल राजाओं के लिए आपत्तिकाल में करने योग्य है, अन्य समय में नहीं। धन से ही धर्म, काम, लोक तथा परलोक की सिद्धि होती है। उस धन को धर्म से ही पाने की इच्छा करे, अधर्म से कभी धन का संग्रह न करे (अध्याय -)।

मीमांसा

आज प्रजातंत्र युग में सरकार की ओर से बहुत धनियों के यहां छापा पड़ता है जहां आय और बिक्री कर बचाकर बहुत धन संचित होता है। सामान्य प्रजा से सरकार धन-संग्रह नहीं करती है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस संदर्भ में टिप्पणी की है–"कोश संग्रह के लिए यदि कुछ अत्याचार और उत्पीड़न भी करना पड़े तो भी क्षम्य है; यह कोशवादी आचार्यों का मत था।"

(आपद्धर्म खंड)

. आपत्तिग्रस्त राजा के कर्तव्य तथा धर्म का स्वरूप

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! जिसकी सेना-संपत्ति क्षीण हो गयी हो, जो आलसी हो, बंधुओं के प्रति दया रखने के कारण उनके नाश के भय से जो उन्हें

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

लेकर युद्ध नहीं कर सकता, जिसे मंत्री आदि पर संदेह है, जिसका आचरण स्वयं शंकाग्रस्त है, जिसकी मंत्रणा गुप्त नहीं रह सकी, जिसके नगर और देश को अनेक भागों में बांटकर शत्रुओं का कब्जा है, जिसके पास धन का संग्रह नहीं रह गया है, जिसके मित्र साथ छोड़ चुके हैं, जिसके मंत्री शत्रुओं द्वारा फोड़ लिए गये हैं, जिस पर शत्रुदल का आक्रमण हो गया है, जो शत्रु द्वारा पीड़ित तथा दुर्बल होकर घबरा गया है, वह क्या करे, इस संकट से वह किस प्रकार अपने को छुड़ाये?

भीष्म ने कहा–यदि आक्रमणकारी राजा बाहर का है, उसका आचार-विचार शुद्ध है, यदि वह धर्म और अर्थ के साधन में कुशल है तो उससे शीघ्र ही संधि कर लेना चाहिए। जो ग्राम या नगर आक्रमणकारी के अधिकार में चले गये हों, उन्हें मधुर वचन से अनुनय-विनय करके छुड़ाने की चेष्टा करे। यदि आक्रमणकारी राजा पापपूर्ण विचार रखने वाला तथा बलवान हो, तो अपना कुछ देकर भी उसके साथ संधि कर लेना चाहिए। अथवा ठीक समझे तो बहुत-सा धन लेकर राजधानी छोड़कर कहीं चला जाय। यदि वह जीवित रहेगा, तो कभी राजोचित गुण से पुनः धन का उपार्जन कर लेगा। खजाना और सेना का त्यागकर भी अपने शरीर को बचा लेना चाहिए। शत्रु का आक्रमण होने पर राजा अपने अंतःपुर को बचाने की चेष्टा करे। यदि उस पर शत्रु का अधिकार हो जाय, तो उससे अपनी मोह-ममता हटा ले। जहां तक हो राजा अपने आप को शत्रु के हाथ में न फंसने दे।

युधिष्ठिर ने कहा–यदि बाहर से शत्रु का कब्जा हो और भीतर मंत्री आदि कुपित हों, खजाना लुट गया हो, गुप्त मंत्रणा प्रकट हो गयी हो, तब क्या करना चाहिए?

भीष्म ने कहा–ऐसी अवस्था में तो शीघ्र संधि कर ले अथवा शत्रु को निकालकर खदेड़ दे। यदि ऐसी अवस्था में मृत्यु भी हो जाय, तो अपना भला समझे। यदि सेना राजा के प्रति प्रेम रखनेवाली और बलवान है, तो थोड़ी सेना से भी राजा विजय पा सकता है। यह साहस रखे कि विजय होगी तो राज्य मिलेगा और यदि मारा जाऊंगा तो स्वर्ग मिलेगा। अथवा आक्रमण में कोमलता लाने के लिए विपक्ष के लोगों को संतुष्ट करके और उनके मन में विश्वास जमाकर उनसे युद्ध बंद करने के लिए विनय किया जाय और स्वयं भी उन पर विश्वास करे।

युधिष्ठिर ने कहा–यदि राजा राज्य पर नियंत्रण न कर सके और लुटेरों द्वारा सर्वत्र अधिकार हो जाय, तो ब्राह्मण किस वृत्ति से निर्वाह करे?

भीष्म ने कहा–ब्राह्मण को अपने विज्ञान बल से निर्वाह करना चाहिए। संसार का धन सज्जनों के लिए है, दुष्टों के लिए नहीं। जो अपने को बीच में रखकर दुष्ट मनुष्यों से धन लेकर सज्जनों को देता है, वह आपद्धर्म का ज्ञाता है। राजा को चाहिए कि वह यह समझे कि राज्य में रहने वाले धनियों का धन मेरा ही है, अतएव उनके दिये बिना उनका धन बलपूर्वक ले ले। यह बात निंदित है, किंतु आपत्तिकाल में प्रजा की रक्षा के लिए ऐसा करने से राजा को कोई बुरा नहीं कहेगा। आपत्तिकाल में अपने या दूसरे राज्य से जैसे संभव हो धन-संग्रह करना चाहिए। राज्य में रहने वाले जो कंजूसी तथा गलत आचरण के कारण दंड पाने योग्य हैं, ऐसे धनियों से धन लेना चाहिए। परंतु कितनी ही आपत्ति हो ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, अच्छे या गलत ब्राह्मणों से उन्हें पीड़ा देकर धन न ले। यदि राजा ऐसा करेगा, तो पाप का भागी होगा।

प्रजा के उद्वेगित होने से केवल उनके द्वारा किसी की निंदा-प्रशंसा करने से राजा किसी को न दण्ड दे और न सत्कार करे। किसी की निंदा न करना चाहिए और न सुनना चाहिए। जहां किसी की निंदा होती हो, वहां अपने कान बंद कर ले अथवा वहां से उठकर चला जाय। दुष्टों का स्वभाव होता है दूसरे की निंदा करना या चुगुली करना। सज्जन दूसरे के सद्‌गुणों का ही वर्णन करते हैं। राजा के सहायक जिस आचरण के हों, राजा वैसे आचरण से उन्हें अपनाये। धर्मज्ञ पुरुष आचार को ही धर्म का लक्षण मानते हैं। किंतु जो शंख और लिखित मुनि के प्रेमी हैं और उन्हीं के मतानुसार चलते हैं, वे लोग यह मत नहीं मानते हैं कि ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य तथा ब्राह्मण का धन नहीं लेना चाहिए। वे लोग ईर्ष्या अथवा लोभ से ऐसी बात नहीं करते हैं, धर्म मानकर ही करते हैं। शास्त्रों के विपरीत कर्म करने वाले को दंड देने की जो बात आती है, उसमें वे आर्ष प्रमाण भी देखते हैं जिसमें यह बात आती है "घमंड में पड़कर कर्तव्य-अकर्तव्य पर ध्यान न देकर कुमार्ग पर चलने वाले गुरु को भी दण्ड देना आवश्यक है।" देवता भी नीच कर्म करने वालों को नरक में गिराते हैं। अतएव छल से धन पाने वाला धर्मभ्रष्ट है। शास्त्रों द्वारा समर्थित, सज्जनों द्वारा अनुमोदित तथा अपने विवेक से निर्धारित धर्म है। वैसे धर्म के यथार्थ स्वरूप को खोज पाना वैसे ही कठिन है जैसे सांप के पद-चिह्न का पता लगाना।

. **गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।**
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्
(महाभारत, गीताप्रेस, पृष्ठ की टिप्पणी से उद्‌धृत)

अतएव श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्ग से चलें उसी के अनुसार चलना चाहिए (अध्याय -)।

मीमांसा

उपर्युक्त विचारानुसार शंख और लिखित मुनि अधिक विचारक तथा निष्पक्ष लगते हैं।

. राजा के लिए कोष–संग्रह आवश्यक तथा अमर्यादित दस्युवृत्ति की निंदा

राजा अपने देश तथा शत्रु देश से धन लेकर अपना खजाना भरे। खजाने से धर्म बढ़ता है और राज्य की जड़ें मजबूत होती हैं। "जो पवित्र आचार–विचार से रहने वाले हैं, वे कभी खजाना नहीं भर सकते और जो अत्यंत क्रूर हैं, वे भी इस काम में सफल नहीं हो सकते। इसलिए बीच का रास्ता अपना कर खजाना बढ़ाना चाहिए।" बलहीन राजा के पास खजाना कहां? खजाना बिना सेना कहां? सेना के बिना राज्य कहां और राज्य के बिना लक्ष्मी कहां? धन के कारण ही राजा ऊंचा होता है। धन नष्ट हुआ तो राजा नष्ट है। धन–विहीन राजा की अवहेलना साधारण लोग भी करते हैं। सेवक उससे थोड़ा लेकर संतुष्ट नहीं होते और न उसका काम करने में मन लगाते हैं। जैसे कपड़े गुप्त अंगों को छिपा देते हैं, वैसे धन राजा के दोषों को छिपा देता है। राजा उद्यमशील हो। उसे कहीं दबना नहीं चाहिए।

राजा पशुओं के साथ भले वन में विचरण करे, परंतु लुटेरे और डाकुओं के साथ न रहे। लूट–फूंक, मारकाट करने वालों की सेना जल्दी इकट्ठी हो जाती है। सर्वथा मर्यादा–शून्य मनुष्य से सबको भय होता है। केवल निर्दय व्यवहार करने वालों से डाकू भी भय खाते हैं। राजा सब में मर्यादा का स्थापन करे। संसार में ऐसे लोग भी हैं जो यह माने बैठे हैं कि लोक–परलोक कुछ नहीं है। ऐसे नास्तिक मनुष्यों से दूर रहना चाहिए। डाकुओं में भी मर्यादा होती है। अच्छे डाकू धन तो लूटते हैं, परंतु न वे किसी की हत्या करते हैं और न किसी स्त्री का शील भ्रष्ट करते हैं। जो मर्यादा का ध्यान रखते हैं उन डाकुओं से बहुत लोग प्रेम भी करते हैं, क्योंकि उनके द्वारा बहुतों की रक्षा भी होती है। युद्ध न करने वाले को मारना, परस्त्री का शील नष्ट करना, कृतघ्नता, ब्राह्मण के धन का

. **न कोशः शुद्धशौचेन न नृशंसेन जातुचित्।**
मध्यमं पदमास्थाय कोशसंग्रहणं चरेत् ,

. आपत्तिग्रस्त राजा के कर्तव्य तथा धर्म का स्वरूप